Journal of Advances in Developmental Research (IJAIDR)
E-ISSN: 0976-4844 ● Website: www.ijaidr.com ● Email: editor@ijaidr.com

नसिरा शर्मा के कथा साहित्य में स्त्री– विमर्ष

गोपाल लाल बैरवा

सहायक आचार्य, हिन्दी
राजकीय कन्या महाविद्यालय, नादौती, करौली

आज का युग महिला सषक्तिकरण का युग है। जब से महिला सषक्तिकरण वर्ष मनाया गया तब से स्त्री विमर्ष विषय केन्द्र में आने लगा। इसलिए सभी सुधी जन–साहित्यकार, पत्रकार व्यवसयी, कॉरपोरेट कर्मी, इस दिषा में सजग है। विज्ञापनदाता, समाज सेवक, कार्यकार्ता, मीडिया फिल्म आदि हर कोई सदियों से पीछे धकेल दी गई शोषित–दमित स्त्री को केन्द्र में लाकर उस पर पुनः विचार करने की तैयारी में है।

स्त्री–विमर्ष शब्द को सही ढंग से समझने के लिए इसे सर्वप्रथम दो भागों में विभक्त करना होगा। 'स्त्री तथा विमर्ष। 'स्त्री' वैदिक संस्कृत शब्द है। 'ऋग्वेद' (4–6–7) में इसका सर्वप्रथम प्रयोग किया गया था। स्त्री शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार 'स्त्री–सूत्री– जन्मदात्री अर्थात् वह परिवार की सूत्रधारक हाने से स्त्री कही जाती हैं। 'स्त्री' शब्द 'सत्य' धातु से बना है जिसका अर्थ लज्जायुक्त होना लिया जाता है। पंतजलि ने कहा 'नारी' को स्त्री इसलिए कहा जाता है कि गर्भ की स्थिति उसके भीतर होती है। उनकी एक दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार शब्द, स्पर्ष, रूप, रस और गंध का समुच्चय स्त्री है। ''पति का सम्मान करने वाली अथवा पूज्य होने के कारण नारी को महिला भी कहा जाता है। ''मह़इलच़आ–महिला''। प्रख्याता आलोचक नामवर सिंह के शब्दों में 'विमर्ष' हिन्दी में मिषेल फूको के 'डिस्कोर्स' का अनुवाद है। वास्तव में 'स्त्री विमर्ष' का सामान्य अर्थ 'स्त्री' के सन्दर्भ में विमर्ष, विचार, विनिमय करना है। 'एक दूसरा अर्थ इस रूप में लगाया जा सकता है ''स्त्रियों के विषय में विचार, एवं चिंतन करना। ''इनका तीसरा अर्थ ''स्त्री का, स्त्री के लिए, स्त्री द्वारा लिखा गया, लेखन और विमर्ष है।''

स्त्री विमर्ष की अर्थवत्त एवम् सार्थकता पर जोर देते हुए विवादस्पद रचनाकार तस्लीमा नसरीन साफ शब्दों में कहती है कि ''हमरा विरोध पुरूष जाति से नहीं है, विरोध है पुरूष की उस सांमती मनोवृति से, जो नारी को दासी से अधिक दर्जा नहीं देती।'' वही आषारानी व्होरा का मानना है '' अधिकारोकर मांगे नहीं, अधिकारों का अर्जन ही वह लक्ष्य है, जिसके लिए हमें अपने आपसे और अने बाहर दो मोर्चा पर दुहरा संघर्ष करना हैं। यह संघर्ष जितना तीव्र होगा, जीत उतनी ही सुनिचित होगी।'' मृणाल पांडे लिखती है ''स्त्री के अस्तित्व को, इसके पुरूष से जुडे संबधों तक ही सीमित करके न देखा जाए बल्कि पुरूष की ही तरह उसे भी मानवता का एक भिन्न तथा अनिवार्य और पुरूष तत्त्व माना जाए।

बचपन में पिता, किषोरावस्था में भाईयों, युवावस्था में पति और बुढापे में बेटों की अधीनता लंबे समय तक भौतिक, आर्थिक, भावनात्मक परावलंबन स्त्री जीवन का केन्द्रीय सत्य रहा है। लेकिन स्थिति हमेषा से ऐसी न थी। कुछ ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त होते है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था से पूर्व

आदिम कबीलाई व्यवस्था में कहीं–कहीं पर मातृसत्तात्मक समाज था जिसमें स्त्री न केवल पूज्य थी वरन समाज तथा परिवार की डोर भी इनके हाथ में थी। मातृसत्तात्मक परिवार का सामान्य अर्थ इस तरह लगाया जाता है कि ''ऐसा परिवार जिसमें सत्ता सत्री की हो अर्थात ऐसा समाज जिसमें स्त्री का वर्चस्व हो। उसे निर्णय लेने का अधिकार हो। इस शब्द का समकालीन अर्थ इस प्रकार मिलता है।

''ऐसा परिवार जिसमें मॉ (यानी स्त्री) के हाथ में सम्पत्ति और परिवार निर्णय के सारे अधिकार हो''। आज की स्त्री षिक्षित है, आर्थिक रूप से सबल है तथा बौद्विक रूप से सक्षम है। भारत में आज मातृसत्तात्मक परिवार मेघालय (पूर्वोत्तर राज्य) मे मिलता है लेकिन चूंकि वहां सम्पत्ति का अधिकार परिवार में सबसे छोटी बेटी को प्रदत्त है, अतः उसके विवाह कर धन हडपने की घटनाएं देखने को मिलती है। नासिरा शर्मा ने इन घटनाओं की निंदा अपने लेख संग्रह 'औरत के लिए औरत' में की है। समकालीन कथा साहित्य में नारी जीवन मे संघर्ष, रोमांस, स्त्री–पुरूष सम्बन्धों में बदलाव आदि को लेकर कई रचनाएॅ लिखी गयी है। वैसे भी स्वातंत्रयोतर भारत में विगत पचाय–साठ वर्षो से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक जीवन में अभूतपूर्व बदलाव परिलक्षित होते है। भारतीय जन समाज में प्रचलित संयुक्त परिवारों की जगह एकल परिवार अस्तित्व में आ रहे। पारम्परिक जन समाज में विघटन स्थानान्तरण की प्रक्रिया तेज हुई। यातायात और रोजगार के विकास ने मानवीय जीवन को विकासषील बनाने के साथ–साथ कम संत्रस्त भी नहीं बनाया है।

समकालीन महिला रचनाकारों में मन्नू भण्डारी 'महाभोज' उपन्यास के माध्यम से राजनैतिक षड्यंत्रों को ग्रामीण व कस्बाई संदर्भों में उजागर करती है। ''मृदुला गर्ग ने चित्तकोबरा' और 'कठगुलाब' उपन्यासों में माध्यम से स्त्री–पुरूष संबंधों में आये बदलाव को संष्लिष्ठ और अन्तग्रंथित रूप में दर्षाया है। पर नासिरा शर्मा का का कथा साहित्य अन्य नारी एवं पुरूष रचनाकरों से इस संदर्भ में विलक्षण है कि उन्होने 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में ग्रामीण जनजीवन की त्रासदी को नारी पात्रों के माध्यम से अभिज्ञापित किया है। तथा 'षाल्मली' पढी–लिखी नारी के जीवन संघर्ष को रेखांकित किया है। कुइयांजान जल समस्या पर केंद्रित औपन्यासिक कथा है। जिसमें गांव और शहर दोनों के विलक्षण चरित्र है तो मरजीना का देष–इराक में इराकी समाज एवं महिलाओं की सोचनीय स्थिति पर आधारित लेख संग्रह है। 'जहॉ फब्बारे लहू रोते है' एवं 'सात नदियां एक समंदर कृतियां भारतेतर परिवेष का गहन अध्ययन प्रस्तुत करती है। से कृतियां प्रमाण है लेखिका की इसी विषेषता का कि उनका कैनवस व्यापक है तथा उस पर कलम की कई कहानियों में महानगरीय जीवन की व्यावसायिता के साथ–साथ पारंपरिकता, ऐतिहासकिता एवं मानवीय संवेदनाओं के चित्र एवं नारी मन की जिजीविषा मिलती है। लेखिका ने ने अपनी रचनाओं में व्यापक सामाजिक प्रष्नों से स्त्री मुद्दों को जोडकर स्त्री में समयानुरू बदलाव आये है षिक्षा रोजगार वैष्विक विकास व व्यावसायिक अभिरूचियों के कार्य–कारण से और महिला सषक्तिकरण को लेकर उठे स्वरों की बदौलत। नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में ग्रामीण व शहरी जन जीवन दोनों के पात्र है। विदेषों खासकर, मुस्लिम देषों के पात्र भी है। समय–सन्दर्भ के अनुकुल नासिरा शर्मा के कथा साहित्य के विविध प्रसंगो की चर्चा की जायेगी।

आदिम जीवन व्यवस्था और कबीलाई समाज

आरंभिक जीवन व्यवस्था और कबीलाई समाज में मनुष्य भौतिक जीवन की चिंताओं से ग्रस्त था। इस युग में नैतिकता, आचार संहिता, धर्म, जाति, उॅचे–नीचे, स्त्री–पुरूष आदि भेदभाव का झंझट न था। जीवन निर्वाह के लिए कंद मूल, फल आदि उपलब्ध थे। कपडों की चिन्ता न थी। इसलिए लज्जा या शर्म किस चिडिया का नाम है यह भी उन्हे ज्ञात न था।

मातृसत्तत्मक समाज

मातृसत्तात्मक समाज या परिवार की शुरूआत घुमक्कड जातियों से शुरू हुई थी। तक पषुपालन ही मुख्य पेषा था। पुरूष के झुण्ड लेकर चरगाहों में भटकते तो स्त्रियॉ घर और बच्चों की देखभाल करती। घर में पिता की उपस्थिति नियमित रूप से न रहती, इस तरह परिवार की सत्ता धीरे–धीरे उसके हाथों में आने लगी और मातृसत्तात्मक परिवार स्थापित होने का अवसर प्राप्त हुआ। जगदीष्वर चतुर्वेदी के अनुसार 'ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करें तो पाएंगे कि भारत में ईसा पूर्व 5500 वर्ष से पितृसत्ता का आगमन हुआ। वैदिक आर्यो को पितृसत्ता की विकसित अवस्था माना जाता है।

कालान्तर में कृषि व्यवस्था में भी नारी पूज्यनीय थी क्योंकि उसकी तुलना भूमि से कि जाती थी। भूमि की तरह उर्वरा और जीवनदायिनी होने के कारण ही उसे भूमि कहा गया। उसने जन्म भी दिया और विनाष भी खुद करती रही। ''मनमानी, वैभवषाली प्रकृति की तरह क्रूर, वह स्त्री एक साथ मांगलिक और अषुभ दोनों थी। कभी व दुर्गा बनी, कभी काली। पूरे पष्चिमी एषिया में वह भिन्न नामों से पूजी गई।

महाभारत काल में भी मातृसत्तात्मक परिवार के अंष दिखायी देते हैं। वेद शर्मा लिखते है ''कभी सत्यभामा महाभारत में पूछती है – द्रौपती तु पांच–पांच पतियों को कैसे सन्तुष्ट करती हो।'' इस तरह यह कहा जा सकता है कि राज्य व्यवस्था में स्त्री–पुरूष सम्बन्ध बिलकुल अलग प्रकार के थें। वहां पॉच पतियों के साथ रहकर भी द्रौपती पतिव्रता कहलाई गयी। द्रौपती ही क्यों, कुंती, माद्री तक के भी एक से अधिक पति थें। बात कुछ भी हो लेकिन उस युग में स्त्री–पुरूष संबंधों में आज सी जर्जरता न थी। उस दौरान पुत्रों को पिता के नाम नहीं बल्कि माता के नाम से सम्बोधित किया जाता था जैसे कि अर्जुन को कौन्तेय, कर्ण को राधेय और कृष्ण को यषोदानंदन।

स्त्री विमर्ष का स्वरूप

संमतवादी व्यवस्था में नारी संपत्ति, उपभोग और विलास का प्रतीक रही है। पुरूष वर्चस्ववादी की ओर संकेत करते हुए फ्रेडरिक एंग्लेस ने लिखा है कि ''अब घर के अंदर भी पुरूष ने अपना आधिपत्य जमा लिया है। नारी पदच्युत कर दी गयी। वह पुरूष की वासना की दासी, संतान उत्पन्न करने का एक यंत्र मात्र बनकर रही गई। डॉ. सूर्यनारायण के रणसूभे के अनुसार ''दुनिया की पुरूष प्रधान संस्कृति ने स्त्री को उसके जैविक रूप में ही स्वीकारा है, एक जनन यंत्र के रूप में। उसे कहीं भी उसने व्यक्ति के रूप में स्वीकारा नहीं था। व्यक्ति के रूप में स्वीकारा जाए ऐसी उसकी मांग बहुत पुरानी है। संभवतः विष्व भर में ऐसी मॉग करने वाली तेजस्वी स्त्री–द्रौपती है जिसने भरे दरबार में तत्कालीन सभी तथाकथित पुरूषों से यह प्रष्न किया था कि मैं द्यूत में लगाई जाने वस्तु हूॅ या

व्यक्ति नारी मुक्ति का अर्थ ही है, नारी की वस्तु रूप से मुक्ति लेकिन आज स्त्री ने अपनी शक्ति को पहचान लिया है, जिसके चलते पुरूष वर्चस्ववादी समाज आतंकित हो गया है। स्त्री को पीछे ठेलने के लिए 'वेद', पुराणों, आख्यानों की दुहाई देकर उसकी स्थिति को पुनः स्थापित करने की कोषिष की जा रही है। वैदिक युग की स्त्री के सम्बन्ध में जो मान्याताऐं प्रचलित है वे वास्तविक सत्य नहीं है। इसी प्रकार रामायण, महाभारत काल में महिलाओं का वर्णन विदुषियों के रूप में कम और तप, त्याग, नम्रता, पति की सेवा आदि गुणों से विभूषित गृहस्वामिनी के रूप में अधिक मिलता है। महाभारत काल में पाण्डवों द्वारा द्रौपती का जुए में दावं पर लगा देना और रामायण काल में धोबी द्वारा सन्देह व्यक्त करने का मर्यादा पुरूषोत्तम राम द्वारा सीता को वनवास देना यही स्पष्ट करता है कि पत्नी पति की संपत्ति थी, वह अधिकारपूर्ण उसके साथ मनचाहा व्यवहार कर सकता था। महाभारत और रामायण काल के पश्चात स्त्री की स्थिति में और अधिक गिरावट आने लगी।

बौद्व काल में महात्मा बुद्व भी नारी को संघ में दीक्षित कराने के पक्ष में नहीं थे। उनका कथन था– ''नारी के प्रवेष से संघ की आयु क्षीण हो जाएगी। वह सहस्त्र वर्ष जीने के बदले पॉच सौ वर्ष भी नही जिएगा।'' बाद में वज्रानियों के समय में नारी का भोग्या रूप छोड कोई अन्य रूप सामने नहीं आया। पुरूष वर्चस्व आज पितृसत्तात्मक के नाम से काफी प्रचलित है। पुरूष वर्चस्व या पितृसत्ता का सामान्य अर्थ पुरूष का स्त्री पर प्रभुत्व माना जाता है।

तसलीमा नसरीन का कहना है ''स्त्री को डरना एवं लज्जालु होना पुरूष प्रधान समाज ने सिखाया है क्योंकि भयभीत एवं लज्जालु रहने पर पुरूषों को उस पर अधिकार जताने में सुविधा होती हैं। इसलिए डर और लज्जा को ''स्त्री कहा जाता है। समाज में कुछ ही लोग होंगे जो निर्भीक और लज्जाहीन स्त्री को बुरा नहीं कहते हो।

हमारे जातीय सामूहिक अवचेतन में पुरूषों की श्रेष्ठता की धारणा इतनी अधिक रची बसी है कि हम इससे अलग सोच ही नहीं सकते। इस संदर्भ में प्रभा खेतान का कथन है– ''स्त्री पैदा होती है ठंडे उच्छवासों के बीच। उसकी पहली रूलाई सुनकर एक ही आवाज गूॅज उठती है, बेटी आ गई। आज के युग मे ंतो बेटी के पैदा होने की भी जरूरत नहीं क्योकि स्केनिंग के द्वारा भ्रूण के सेक्स का निर्धारण गर्भावस्था में ही हो जाता है। यदि लडकी है तो समाज की, परिवार की, पिता और बहुधा स्वयं गर्भ धारणा करने वाली जननी की पहली प्रतिक्रिया है– हटाओं इसे, खत्म करो, दूसरी हुई तब भी किसी हाल में नही चाहिए। हालांकि कई स्वयंसेवी संस्थाएं भ्रूण हत्या को भी कानून के जरिए रोकने के लिए प्रयासरत है।

सामंथी व्यवस्था में नारी

जो लोग मध्ययुग को स्वर्ण युग कहते नहीं अघाते, वह शायद इस युग की 'स्त्री' की स्थिति से बेखबर है। मध्ययुग में मुसलमानों के आक्रमण एवं मुलगकालीन शासन के बाद स्त्रियों की भूमिका बदलती गई। उस पर नियंत्रण कहा हो गया। भगवती शरण उपाध्याय ने उसकी स्थिति की ओर संकेत करते हुए लिखा है– ''कालान्तर में युग में जन्मी जिसे इस देष के इतिहास के स्वर्ण युग कहते है। इस युग ने कला में, साहित्य में, शक्ति में सज्जनता में उन्नति कर आकाष को छू लिया, परन्तु मेरे लिए बन्धन जैसे के–तैसे बने रहे।' इस युग में भी व्यवस्था की षिकार नारी ही हुई।

सांमती युग सुरा और सुंदरी में डूबा रहता था अकबर के हरम में जोधाबाई से मरियम तक सभी जातियों की नारियॉ थी। उनके संदर्भ में अबुल फजन ने गलत नहीं कहा था कि 'जो इन अनेक प्रकार की नारियॉ के पारस्परिक संघर्ष सफलतापूर्वक शान्त कर सकता था, वह निष्चय ही साम्राज्य आसानी से संभाल सकता है। इस युग मे बादषाहो, सरदारों, अमीर–उमराओं के हरम में हजारों की संख्या में स्त्रियॉ पत्नियों– उपपत्नियों, रखैलें और दासियों के रूप में रखी गयी। इतने बडे बडे हरमों में उनकी दषा शोचनीय थी। दरबारों में नृत्यगायन करने वाली सामान्य स्त्रीयों की संख्या इतनी अधिक थी, कि स्वच्छंद काम सम्बन्धों को बढावा लि गया। मुगल बादषाहो, सरदारों तथा धनवान व्यक्तियों की बढती विलासिता की प्रवृत्ति ने स्त्री को केवल विलासपूर्ति का साधन मात्र बना दिया।

इसी युग में विभिन्न सामाजिक कुरीतियों का जन्म हुआ जैसे, पर्दाप्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह, जौहर प्रथा, दासी प्रथा आदि। उस दौरान मुस्लिम समाज में स्त्रियों की पवित्रता पर निगाह रखने के लिए घरों में जन नोखाने व बुरका पहनने के नियम बनें।

इसी युग में देवदासी का परिवर्तित रूप सामने आया। आठवीं सदी तक देवदासियों के प्रति पवित्र भावना थी। लेकिन इस युग में बादषाहो, राजाओं और पुजारियों ने मिलकर व्यभिचार फैलाया। नर्तकियॉ देवदासी बन गई और 'देवदासी' शब्द वेष्या का पर्याय बन गया। इस तरह स्त्री अनेकानेक बंधनों में जकडती गयी। मुख्य रूप से इस युग की स्त्री को भोग की वस्तु तथा प्रदर्षन की सामग्री मात्र समझा गया।

नवजागरण काल और स्त्री की भूमिका

सांमती व्यवस्था के तहत हम देख ही चुके है कि किस तहर इस युग में स्त्री की स्थिति लगातार गिरती गयी। अनेक कुप्रथाओं ने स्त्री की कमर तोड दी। मुगलों के आक्रान्त से वह अभी–अभी उबर ही रही थी कि उस पर अंग्रेजी शासन सत्ता का घोर संकट आन पडा। इस समय सम्पूर्ण भारतवर्ष गुलामी के बधंन में जकडा हुआ था। देखते ही देखते सारे राजे–रजवाडे, अंग्रेजी साम्राज्य के अधीन होते गये।

अंग्रेजो के बढते शोषण चक्र का मुकाबला करते हुए सन 1857 में प्रथम स्वाधीनता संग्राम लडकर भारतवासियों ने अपनी देषभक्ति का परिचय दिया। महादेवी वर्मा का कहना है ''प्रथम बार भारत की भिन्न–भिन्न जाति, धर्म और सम्प्रदायों के व्यक्तियों ने एक होकर विदेषी शासन से मुक्त होने का प्रयास किया और नारी ने सम्पूर्ण प्राण प्रवेग के साथ अपने सहयोगी होने का प्रमाण दिया। जिसमें रानी लक्ष्मी बाई की भूमिका अद्वितीय रही जिसने न केवल अपनी वीरता का परिचय दिया बल्कि अंग्रेजों के विरूद्व सैन्य संचालन करते हुए अपने प्राणों की आहुति देकर प्रथम संग्राम को बल प्रदान किया। इस क्रान्ति में झॉसी की रानी लक्ष्मीबाई के अतिरिक्त, लखनउ की बेगम हजरत महल, दिल्ली की जमानी बेगम, चौहानी रानी कितुर की रानी चित्रमा ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

1857 की असफल क्रान्ति के पश्चात भारत में ब्रिटिष सामाज्य अधिकाधिक प्रबल हुआ। भारतीय जनता की स्थापना। रेल, डाकघर, चिकित्सालय खोले। षिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए जिला परिषदों की स्थापना की। रेल, डाकघर, चिकित्सालय खोले। षिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए कॉलेज तथा विष्वविद्यालयों की स्थापना की। फलस्वरूप भारत में नवजागरण की लहर आयी।

भारत में सामाजिक पुनर्जागरण और राजनीतिक चेतना का विकास साथ–साथ हुआ। इस समय भारतीय समाज को अज्ञानता, गरीबी, शोषण, दासता, परापरागत रूढियों से एक साथ संघर्ष करना पडा। भारतीय स्त्री सदियों से पुरूष वर्चस्व वाले समाज में रहने के लिए बाध्य हो गयी थी। धीरे–धीरे उसकी गणना दलित वर्ग में होने लगी थी। ऐसे युग में नवजागरण की अलख जगाने वाले महापुरूषों का प्रयत्न सचमुच भारतीय जन जीवन में नयी खुषियॉ लेकर आया। लेकिन सबसे बडी उपलब्धि यह रही कि स्त्री के लिए इस युग में 'षिक्षा' क्षेत्र के द्वार जरूर खुल गये थे, भले ही वह धीमी गति से हो।

हिन्दी जागरण के नए झोंके आये। परन्तु पुरूष वर्ग इन झोंको से स्त्रियों को सुरक्षित रखते हए उन्हें समानतो देने से इन्कार करता रहा। सच पूछा जाये तो हिन्दी का सारा नवजागरण पुरूषों का आधा–अधूरा नवजागराण था। जिन महावीर प्रसाद द्विवेदी को हिन्दी नवजागरण का अग्रदूत माना गया है वे भी नारी जागरण के पक्षधर नहीं थे। 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन का दायित्व संभालने के बाद उन्होने 'जापान की स्त्रियॉ' लेख लिखकर स्त्रियों के लिए मनुवादी व्यवस्था का समर्थन किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे प्रगतिषील विद्वान भी इस रूढिवाद से मुक्त न हो सके ''जो षिक्षा स्त्रियों को मेम व निर्लज्ज बना दे वह षिक्षा नहीं वरन कुषिक्षा है। स्त्री का मुख्य उद्देष्य नम्र, सहिष्णु और शान्त बनना, गृह कार्य में दक्ष होना तथा उचित–अनुचित का ज्ञान पैदा करना है। जो षिक्षा निर्लज्ज बनाती है, उसके हम विरोधी हैं। आगे चलकर समाज सुधारक आन्दोलन, भारतीय मुक्ति आंदोलन, पाष्चत्य स्त्री मुक्ति आंदोलन से स्त्री की स्थिति में सुधार आया।

समाज सुधार आन्दोलन और नारी

भारतीय नारी का यह मुक्ति–संघर्ष 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही शुरू हो गया था, जबकि बंगाल में 'ब्रम्ह समाज', मुंबई में 'प्रार्थना समाज' एवं उत्तर भारत और पंजाब में 'आर्य समाज' की स्थापना हुई। ये तीनों संस्थाऍ समाज सुधार को लेकर चली और इन्होने अपने कार्यक्रमों में नारी उत्थान को प्रमुख स्थान दिया। जब कोई समाज अपने गौरवषाली अतीत से कटकर अज्ञान, अंधविष्वास, कुप्रथा, कुरीरियों, अकर्मण्यता के गर्त में डूब जाता है तो उस समाज की स्त्रियों को ही सर्वाधिक कष्ट झेलने पडते है। राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानंद, गोविन्द रानाडे, महर्षि कर्वे जैसे समाज सुधारक नेताओं ने इस स्थिति को लक्ष्य किया और अपने सुधार–आंदोलनों में नार–उत्थान को प्रमुख स्थान दिया।

भारतीय नवजागरण के प्रर्वतक राजाराम मोहनराय को स्त्री सुधार का जनक माना जाता है। सबसे पहले उन्होने समाज की समस्याऍ धर्म के माध्यम से हल करनी शुरू की। लेकिन बाद में उन्होने यह जान लिया कि इन प्रथाओं की सबसे बडी षिकार तो स्त्री है। उन्होने ही स्त्रियों में सोई हुई चेतना जागृत की। सबसे पहले उन्होने सती प्रथा को हटाने का प्रयास किया। अतः इन्हीं के प्रयासों के फलस्वरूप 4 दिसम्बर 1829 को सती प्रथा को कानूनन खत्म कराया जा सका। इसके पश्चात उन्होने विधवा विवाह, बाल–विवाह, बहुपत्नी प्रथा का सफाया करना चाहा। उनके कार्यो को संबोधित करते हुए मीराकांत लिखते है– ''महिलाओं की समस्याओं से जुडे समाज सुधार के कार्य में राजा राममोहन राय को जिस आधार ने प्रेरणा दी, वह मानवतावादी तार्किक विचारधारा।

आगे चलकर केषव चन्द सेन के नेतृत्व में ब्रहम समाज महिलाओं की समस्याओं के प्रति और भी अधिक सचेत बने। बालिका विद्यालय खोलकर महिलाओं को षिक्षा देने का मार्ग प्रषस्त कर दिया। सन 1872 ई में सिविल मेरिज एक्ट द्वारा अन्तर्जातीय विवाह को न्याय संगत ठहराया गया तथा विधवा विवाह की अनुमति दी गई। इस संदर्भ में नीरा देसाई का मानना है ''समाज में स्त्रियों, की स्थिति सुधारने की दिषा में राजा राम मोहनरा ने विधवाओं का अग्नि स्नान बंद करवाया और विद्यासागर ने विधवाओं को वैधव्य जीवन की यम यातनाओं से बचाया और कानून द्वारा पुनर्विवाह को अनुमति दिलाने का प्रयास किया।

''प्रार्थना समाज'' के माध्यम से गोविन्द रानाडे ने मुख्य रूप से स्त्री उद्वार व स्त्री, जागरण तथा अछूतोद्वार के प्रष्नों को उठाया। नारी षिक्षा हेतु उन्होने स्त्रियों के लिए रात्रि पाठषालाओं का प्रबन्ध किया, महिला षिक्षा संघ एवम् विधवा आश्रमों की स्थापना की।

आर्य समाज के माध्यम से स्वामी दयानंद सरस्वती ने बेमेल विवाह, परदा प्रथा व दहेज प्रथा का विरोध किया। वे स्त्री षिक्षा के प्रबल समर्थक थे। इसलिए उन्हें स्त्री और पुरूष, दोनो के लिए उच्च मानवीय मूल्यों की सिफारिष की जिससे स्त्रियों के लिए सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्रों में भाग लेने का मार्ग खुल गया। यही नहीं, उन्होने समाज के सभी वर्गे की स्त्रियों को षिक्षा देने की वकालत की। उनकी प्रेरणा से ही स्त्रियों ने समाज सुधार की गतिविधियों में भाग लेना आंरम्भ किया।

उन्नसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में थियोसोफिकल सोसायटी की नींव एक विदेषी महिला ब्लावटस्की ने रखी। उनके पश्चात् एनी बेसेन्ट ने उनके आधे–अधूरे कार्य को पूरा करने का बीडा उठाया। एनी बेसन्ट ने, सन् 1917 ई में कलकत्त अधिवेषन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष पद प्राप्त किया। जिसके माध्यम से उन्होने राजनीतिक अधिकारो की मांग के साथ–साथ महिलाओं की प्रतिगामिता सिद्व की। इनके अतिरिक्त बालगंगाधर तिलक, गांधीजी, कर्वे, लोहिया, महात्मा फुले आदि ने भी स्त्री जागरण के द्वारा स्त्री जीवन को नया मोड दिया।

बाल गंगाधर तिलक का योगदान स्त्री जागरण में महत्वपूर्ण है। वे समाज सुधार के पक्षधर थें। उन्होने हिन्दूवादी नीति की आलोचना करते हुए स्त्री की निर्मम दषा को अपने लेखों में माध्यम से व्यक्त किया। इसी क्रम में महात्मा गांधी का महत्व भी भुलाया नहीं जा सकता। गांधीजी ने ही घर की चार दिवारी में कैद नारी को आंदोलन से जोडा जिसके परिणामस्वरूप बडी संख्या में स्त्रियों ने सत्याग्रह आंदोलन, भारत छोडों आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लिया। गांधीजी की आवाज सुदूर गांवों तक पहुंची और देष की आजादी के उद्देष्य को लेकर महिलाओं ने रातों रात पर्दे को तिलाजंलि दे डाली। देषभक्ति से प्रेरित होकर, सब बाधाओं को पीछे छोडकर हजारों महिलाएँ स्वतंत्रता आंदोलन की लडाई में कूद पडीं। सविनय आंदोलन (1930–31) के दौरान लगभग बीस हजार महिलाएँ जेल गयी। ''गांधीजी ने स्त्रियों को सम्मानजनक स्थान दिलाने तथा विकास की दिषा में मोडने के लिए अथक प्रयत्न किए। यह कहना न होगा कि स्त्री चेतना और उनकी समर्पित भागीदारी से ही स्वतंत्रता आदोलन समय पर सफल हो पाया।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1. कुमार पंकज, जिन्दगी के असली चेहरे, आजकल पत्रिका।

2. शर्मा नासिरा, मेरे जीवन पर किसी के हस्ताक्षर नहीं।
3. शर्मा डॉ. नीलम, मुस्लिम कथाकारों का हिन्दी योगदान।
4. शर्मा नासिरा, पत्थरगली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 2011.
5. शर्मा नासिरा, संगसार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली संस्करण– 2009.
6. शर्मा नासिरा, संगसार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली संस्करण– 2009.
7. शर्मा नासिरा, शाल्मली, किताबघर, प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0–2013.
8. शर्मा नासिरा, सात नदियाँ एक समन्दर ।
9. शर्मा नासिरा, औरत के लिए औरत, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0–2002.
10. शर्मा नासिरा, किताब के बहाने, सं0 2001.